

३. सनत्कुमारचक्रवर्तिनः कथा

नत्वा पञ्च गुरून्भक्त्या स्वर्गमोक्षसुखप्रदान्। चारित्रद्योतने वच्मि चरित्रं तुर्यचक्रिणः ॥१॥
 अत्रैव भरतक्षेत्रे वीतशोकपुरे प्रभुः। अभूदनन्तवीर्याख्यो राज्ञी सीताऽभिधा सती ॥२॥
 पुत्रः सनत्कुमारोऽभूत्तयोः सत्पुण्यपाकतः। चतुर्थश्चक्रवर्तीशः सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः ॥३॥
 षट्खण्डमण्डितां पृथ्वीं संसाध्यैव शुभोदयात्। निधानैर्नवभी रत्नैश्चतुर्दशभिरुत्तमैः ॥४॥
 गजैश्चतुरशीत्युक्तलक्षैर्दक्षो विराजितः। रथैस्तावत्प्रमाणैश्च नित्यं पूर्णमनोरथैः ॥५॥
 अश्वैरष्टादशोत्कृष्टैः कोटिभिर्मर्मभूषितैः। भटैश्चतुरशीत्युक्तकोटिभिः शस्त्रपाणिभिः ॥६॥
 ग्रामैः षण्णवतिप्रोक्तकोटिभिर्धान्यसम्भृतैः। स्त्रीणां षण्णवतिप्राप्तसङ्ख्यानैश्च सहस्रकैः ॥७॥
 लसद्रत्नकिरीटाद्यैर्नरेन्द्राणां सहस्रकैः। द्वात्रिंशद्गणनोपेतैर्नित्यं सेवाविधायिभिः ॥८॥
 इत्यादिसम्पदासारैर्देवविद्याधरैः श्रितः। रूपलावण्यसौभाग्यमहाभाग्यैः समन्वितः ॥९॥
 कुर्वन्राज्यं महाप्राज्यं यावदास्ते विचक्षणः। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां धर्मकर्मपरायणः ॥१०॥
 तावत्सौधर्मकल्पेशः स्वकीये सदसि स्थितः। पुरुषस्य लसद्रूपगुणव्यावर्णनां पराम् ॥११॥
 प्रकुर्वाणः सुरैः पृष्टो देव किं कोपि वर्तते। उक्तप्रकाररूपश्रीर्भरतक्षेत्रके न वा ॥१२॥

३. सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा

स्वर्ग और मोक्ष सुख के देने वाले श्री अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार करके मैं सम्यक्चारित्र का उद्योत करने वाले चौथे सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा लिखता हूँ ॥१॥

अनन्तवीर्य भारतवर्ष के अन्तर्गत वीतशोक नामक शहर के राजा थे। उनकी महारानी का नाम सीता था। हमारे चरित्रनायक सनत्कुमार इन्हीं के पुण्य के फल थे। वे चक्रवर्ती थे। सम्यग्दृष्टियों में प्रधान थे। उन्होंने छहों खण्ड पृथ्वी अपने वश में कर ली थी। उनकी विभूति का प्रमाण ऋषियों ने इस प्रकार लिखा है—नवनिधि, चौदहरत्न, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी करोड़ शूरवीर, छ्यानवें करोड़ धान्य से भरे हुए ग्राम छ्यानवें हजार सुन्दरियाँ और सदा सेवा में तत्पर रहने वाले बत्तीस हजार बड़े-बड़े राजा इत्यादि संसार श्रेष्ठ संपत्ति से वे युक्त थे। देव विद्याधर उनकी सेवा करते थे। वे बड़े सुन्दर थे, बड़े भाग्यशाली थे। जिनधर्म पर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। वे अपना नित्य-नैमित्तिक कर्म श्रद्धा के साथ करते, कभी उनमें विघ्न नहीं आने देते। इसके सिवा अपने विशाल राज्य का वे बड़ी नीति के साथ पालन करते और सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते ॥२-१०॥

एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में पुरुषों के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा कर रहा था। सभा में बैठे हुए एक विनोदी देव ने उनसे पूछा—प्रभो! जिस रूप गुण की आप बेहद तारीफ कर रहे हैं, भला, ऐसा रूप भारतवर्ष में किसी का है भी या केवल यह प्रशंसा ही मात्र है? ॥११-१२॥

इन्द्रेणोक्तं शुभं रूपं यादृशं चक्रवर्तिनः। सनत्कुमारनाम्नोऽस्ति देवानां नापि तादृशम् ॥१३॥
 तच्छ्रुत्वा मणिमालारत्नचूलौ सुरोत्तमौ। तद्रूपं दृष्टुमायातौ प्रच्छन्नं मज्जनक्षणे ॥१४॥
 चक्रिणोरूपमालोक्य सर्वावयवसुन्दरम्। वस्त्रभूषादिनिर्मुक्तं तथापि त्रिजगत्प्रियम् ॥१५॥
 देवानामपि नास्त्येवं रूपं ताभ्यां विचिन्त्य च। शिरःकम्पं विधायेति सिंहद्वारे प्रहर्षतः ॥१६॥
 स्वरूपं प्रकटीकृत्य प्रतीहारं प्रतीरितम्। भो दौवारिक भूपाग्रे त्वया शीघ्रं निरूप्यते ॥१७॥
 दृष्टुकामौ भवद्रूपं स्वगाद्विवौ समागतौ। तदाकर्ण्य प्रतीहारश्चक्रिणं तन्निवेदयत् ॥१८॥
 ततस्तेन विधायोच्चैः शृङ्गारं चक्रवर्तिना। स्थित्वा सिंहासने भूत्याऽऽकारितौ तौ सुधाशिनौ ॥१९॥
 सभायां तौ समागत्य दृष्ट्वा भूषं समूचतुः। हा कष्टं यादृशं रूपं दृष्टं प्रच्छन्नवृत्तितः ॥२०॥
 आवाभ्यां पूर्वमेवेदं लीलया मज्जनाश्रितम्। साम्प्रतं तादृशं नास्ति ततः सर्वमशाश्वतम् ॥२१॥
 तच्छ्रुत्वा सेवकैरुक्तं तथा मण्डनकारिणा। पूर्वरूपादिदानीं च न किञ्चिद्दीनतामितम् ॥२२॥

उत्तर में इन्द्र ने कहा—हाँ, इस समय भी भारतवर्ष में एक ऐसा पुरुष है, जिसके रूप की मनुष्य तो क्या देव भी तुलना नहीं कर सकते। उसका नाम है सनत्कुमार चक्रवर्ती ॥१३॥

इन्द्र के द्वारा देव दुर्लभ सनत्कुमार चक्रवर्ती के रूपसौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नाम के दो देव चक्रवर्ती की रूपसुधा के पान की बढी हुई लालसा को किसी तरह नहीं रोक सके। वे उसी समय गुप्त वेश में स्वर्गधरा को छोड़कर भारतवर्ष में आए और स्नान करते हुए चक्रवर्ती का वस्त्रालंकार रहित, पर उस हालत में भी त्रिभुवनप्रिय और सर्वसुन्दर रूप को देखकर उन्हें अपना सिर हिलाना ही पड़ा। उन्हें मानना पड़ा कि चक्रवर्ती का रूप वैसा ही सुन्दर है, जैसा इन्द्र ने कहा था और सचमुच यह रूप देवों के लिए भी दुर्लभ है। इसके बाद उन्होंने अपना असली वेष प्रकट कर पहरेदार से कहा तुम जाकर अपने महाराज से कहो कि आप के रूप को देखने के लिए स्वर्ग से दो देव आए हुए हैं। पहरेदार ने जाकर महाराज से देवों के आने का हाल कहा। चक्रवर्ती ने इसी समय अपना शृंगार किया। इसके बाद वे सिंहासन पर आकर बैठे और देवों को राजसभा में आने की आज्ञा दी ॥१४-१९॥

देव राजसभा में आए और चक्रवर्ती का रूप उन्होंने देखा। देखते ही वे खेद के साथ बोल उठे, महाराज! क्षमा कीजिए; हमें बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि स्नान करते समय वस्त्राभूषण रहित आपके रूप में जो सुन्दरता, जो माधुरी हमने छुपकर देखी थी, अब वह नहीं रही। इससे जैनधर्म का यह सिद्धान्त बहुत ठीक है कि संसार की सब वस्तुएँ क्षण-क्षण में परिवर्तित होती हैं—सब क्षणभंगुर हैं ॥२०-२१॥

देवों की विस्मय उत्पन्न करने वाली बात सुनकर राज कर्मचारियों तथा और उपस्थित सभ्यों ने देवों से कहा—हमें तो महाराज के रूप में पहले से कुछ भी कमी नहीं दिखती, न जाने तुमने कैसे पहली

अस्माकं प्रतिभातीति श्रुत्वा ताभ्यां च तद्वचः। तद्धीनस्य प्रतीत्यर्थं नृपाग्रे जलसम्भृतम् ॥२३॥
 कुम्भमानीय सर्वेषां दर्शयित्वा पुनश्च तान्। बहिर्निष्कास्य भूपस्य पश्यतः पुरतो घटम् ॥२४॥
 तोयबिन्दुमपाकृत्य तस्मात्तृणशलाकया। तानाहूय पुनस्तेषां स कुम्भो दर्शितस्तराम् ॥२५॥
 कीदृशः प्रागिदानीं च कुम्भोयं कथ्यतामिति। सम्पृष्टास्ते जगुश्चैवं पूर्णोयं पूर्ववद्ध्रुवम् ॥२६॥
 देवौ ततश्च भो राजन् यथायं जलबिन्दुकः। दूरीकृतोपि न ज्ञातस्तथा ते रूपहीनता ॥२७॥
 एतैर्न लक्ष्यते चेति कथयित्वा दिवं गतौ। ततश्चक्री चमत्कारं दृष्ट्वा चित्ते विचारयन् ॥२८॥
 पुत्रमित्रकलत्रादिसम्पदा विविधा तराम्। चंचला चपलेवासौ संसारे दुःखसागरे ॥२९॥
 बीभत्सु तापकं पूति शरीरमशुचेर्गृहम्। का प्रीतिर्विदुषामत्र यत्क्षणाध्वं-परिक्षयि ॥३०॥
 भोगाः पञ्चेन्द्रियोत्पन्ना वञ्चकेभ्योतिवञ्चकाः। यैर्विञ्चितो जनोयं च पिशाचीव प्रवर्तते ॥३१॥
 मिथ्यात्वग्रसितो जीवो जैनवाक्यामृते हिते। न करोति मतिं मूढो ज्वरीव क्षीरशर्करे ॥३२॥
 अद्य हत्वा महामोहं कुर्वेहं स्वात्मनो हितम्। इत्यादिकं विचार्योच्चैः सुधीर्वैराग्यतत्परः ॥३३॥
 कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम्। दानं विधाय कारुण्यादथायोग्यं सुखप्रदम् ॥३४॥

सुन्दरता से इसमें कमी बतलाई है। सुनकर देवों ने सबको उसका निश्चय कराने के लिए एक जल भरा हुआ घड़ा मँगाया और उसे सबको बतलाकर फिर उसमें से तृण द्वारा एक जल की बूँद निकाल ली। उसके बाद फिर घड़ा सबको दिखलाकर उन्होंने उनसे पूछा—बतलाओ पहले जैसे घड़े में जल भरा था अब भी वैसा ही भरा है, पर तुम्हें पहले से इसमें कुछ विशेषता दिखती है क्या? सबने एक मत होकर यही कहा कि नहीं। तब देवों ने राजा से कहा—महाराज, घड़ा पहले वैसा था, उसमें से एक बूँद जल की निकाल ली गई, तब भी वह इन्हें वैसा ही दिखता है। इसी तरह हमने आपका जो रूप पहले देखा था, वह अब नहीं रहा। वह कमी हमें दिखती है, पर इन्हें नहीं दिखती। यह कहकर दोनों देव स्वर्ग की ओर चले गए ॥२२-२८॥

चक्रवर्ती ने इस चमत्कार को देखकर विचारा—स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चाँदी आदि जितनी सम्पत्ति है, वह सब बिजली की तरह क्षणभर में देखते-देखते नष्ट होने वाली है और संसार दुःख का समुद्र है। यह शरीर भी, जिसे दिन-रात प्यार किया जाता है, धिनौना है, सन्ताप को बढ़ाने वाला है, दुर्गन्धयुक्त है और अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ है। तब इस क्षण विनाशी शरीर के साथ कौन बुद्धिमान् प्रेम करेगा? ये पाँच इन्द्रियों के विषय ठगों से भी बढ़कर ठग हैं। इनके द्वारा ठगा हुआ प्राणी एक पिशाचिनी की तरह उनके वश होकर अपनी सब सुध भूल जाता है और फिर जैसा वे नाच नचाते हैं नाचने लगता है। मिथ्यात्व जीव का शत्रु है, उसके वश हुए जीव अपने आत्महित के करने वाले, संसार के दुःखों से छुड़ाकर अविनाशी सुख के देने वाले, पवित्र जिनधर्म से भी प्रेम नहीं करते। सच भी तो है—पित्तज्वर वाले पुरुष को दूध भी कड़वा ही लगता है परन्तु मैं तो अब इन विषयों के जाल से अपनी आत्मा को छुड़ाऊँगा। मैं आज ही मोह-माया का नाशकर अपने हित के लिए तैयार होता हूँ। यह विचार कर वैरागी चक्रवर्ती ने जिनमन्दिर में पहुँचकर सब सिद्धि की

दत्त्वा देवकुमाराय राज्यं पुत्राय धीधनः। त्रिगुप्तमुनिपार्श्वे च दीक्षां जैनीं जगद्धिताम् ॥३५॥
 गृहीत्वा गुरुसद्भवक्या तपश्चोग्राग्रसंज्ञकम्। कुर्वन्पञ्च प्रकारं च चारित्रं प्रतिपालयन् ॥३६॥
 तदा विरुद्धकाहारैस्तस्य सर्वशरीरके। अनेकव्याधयो जाताः कण्डूप्रभृतयस्तराम् ॥३७॥
 तथाप्यसौ महासाधुः शरीरेऽत्यन्तनिस्पृहः। चिन्तां नैव करोत्युच्चैः कुरुते चोत्तमं तपः ॥३८॥
 तदा सौधर्मकल्पेशः सुधीर्धर्मानुरागतः। संस्थितः स्वसभामध्ये चारित्रं पञ्चधा मुदा ॥३९॥
 व्यावर्ण्यश्च देवेन पृष्टो मदनकेतुना। देव देव यथा प्रोक्तं चारित्रं भवता तथा ॥४०॥
 किं कस्यापि लसद्बुष्टेः क्षेत्रे भरतसंज्ञके। अस्ति वा नास्ति तच्छ्रुत्वा सौधर्मेन्द्रो जगाद च ॥४१॥
 सनत्कुमारचक्रेशस्त्यक्त्वा षट्खण्डमण्डिताम्। तृणवच्च महीं धीमान्स्वदेहेऽतीव निस्पृहः ॥४२॥

प्राप्ति कराने वाले भगवान् की पूजा की, याचकों को दयाबुद्धि से दान दिया और उसी समय पुत्र को राज्यभार देकर आप वन की ओर रवाना हो गए और चारित्रगुप्त मुनिराज के पास पहुँचकर उनसे जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि संसार का हित करने वाली है। इसके बाद वे पंचाचार आदि मुनिव्रतों का निरतिचार पालन करते हुए कठिन से कठिन तपश्चर्या करने लगे। उन्हें न शीत सताती है और न आताप सन्तप्त करता है। न उन्हें भूख की परवाह है और न प्यास की। वन के जीव-जन्तु उन्हें खूब सताते हैं, पर वे उससे अपने को कुछ भी दुःखी ज्ञान नहीं करते। वास्तव में जैन साधुओं का मार्ग बड़ा कठिन है, उसे ऐसे ही धीर वीर महात्मा पाल सकते हैं। साधारण पुरुषों में गम्य नहीं। चक्रवर्ती इस प्रकार आत्मकल्याण के मार्ग में आगे-आगे बढ़ने लगे ॥२९-३६॥

एक दिन की बात है कि वे आहार के लिए शहर में गए। आहार करते समय कोई प्रकृति-विरुद्ध वस्तु उनके खाने में आ गई उसका फल यह हुआ कि उनका सारा शरीर खराब हो गया, उसमें अनेक भयंकर व्याधियाँ उत्पन्न हो गई और सबसे भारी व्याधि तो यह हुई कि उनके सारे शरीर में कोढ़ फूट निकली। उससे रुधिर, पीप बहने लगा, दुर्गन्ध आने लगी। यह सब कुछ हुआ पर इन व्याधियों का असर चक्रवर्ती के मन पर कुछ भी नहीं हुआ। उन्होंने कभी इस बात की चिन्ता तक भी नहीं की कि मेरे शरीर की क्या दशा है? किन्तु वे जानते थे कि—

**बीभत्सु तापकं पूति शरीरमशुचेर्गृहम्।
 का प्रीतिर्विदुषामत्र यत्क्षणार्थं परिक्षयि॥**

इसलिए वे शरीर से सर्वथा निर्मोही रहे और बड़ी सावधानी से तपश्चर्या करते रहे—अपने व्रत पालते रहे ॥३७-३८॥

एक दिन सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी सभा में धर्म-प्रेम के वश हो मुनियों के पाँच प्रकार के चारित्र का वर्णन कर रहा था। उस समय एक मदनकेतु नामक देव ने उनसे पूछा—प्रभो! जिस चारित्र का आपने अभी वर्णन किया उसका ठीक पालने वाला क्या कोई इस समय भारतवर्ष में है? उत्तर में इन्द्र ने कहा, सनत्कुमार चक्रवर्ती हैं। वे छह खण्ड पृथ्वी को तृण की तरह छोड़कर संसार, शरीर, भोग

तच्चरित्रं जगच्चित्रं पञ्चधास्ति जिनोदितम्। एतदाकर्ण्य देवोसौ शीघ्रं मदनकेतुवाक् ॥४३॥
 तत्रागत्य महाटव्यामनेकव्याधिसंयुतम्। निश्चलं मेरुवद्भाढं सुरासुरनमस्कृतम् ॥४४॥
 दुर्धरं भूरि चारित्रमनुतिष्ठन्तमद्भुतम्। समालोक्य मुनीन्द्रं तं पवित्रीकृतभूतलम् ॥४५॥
 सम्प्राप्य परमानन्दं तथा तस्य परीक्षितम्। शरीरे निस्पृहत्वं च वैद्यरूपं विधाय वै ॥४६॥
 स्फेटयित्वा महाव्याधीन्सर्वान्वैद्यशिरोमणिः। शीघ्रं दिव्यं करोम्युच्चैः शरीरं रोगवर्जितम् ॥४७॥
 एवं मुहुर्मुहुर्व्यक्तं ब्रुवाणः पुरतो मुनेः। इतस्ततश्च सङ्गच्छन्पृष्टोऽसौ मुनिना तदा ॥४८॥
 कस्त्वं किमर्थमत्रैव निर्जने च वने घने। पूत्कारं सङ्करोषीति तदाकर्ण्य सुरोऽवदत् ॥४९॥
 वैद्योऽहं भवतां देव निखिलं व्याधिसञ्चयम्। स्फेटयित्वा सुवर्णाभशरीरं सङ्करोम्यहम् ॥५०॥
 ततश्च स मुनिः प्राह यदि स्फेटयसि ध्रुवम्। व्याधिं मे स्फेटय त्वं च शीघ्रं सांसारिकं सुधीः ॥५१॥
 तेनोक्तं भो मुने नाऽहं समर्थस्तन्निवारणे। तत्र शूरा भवन्त्येव भवन्तस्तु विचक्षणाः ॥५२॥
 ततः प्रोक्तं मुनीन्द्रेण किं व्याधिस्फेटनेन मे। अशाश्वतेऽशुचौ काये निर्गुणे दुर्जनोपमे ॥५३॥
 निष्ठीवनस्य संस्पर्शमात्रेण व्याधिसंक्षयः। यत्र शीघ्रं भवत्येव किं कार्यं वैद्यभेषजैः ॥५४॥

आदि से उदास हैं और दृढ़ता के साथ तपश्चर्या तथा पंच प्रकार का चारित्र पालन करते हैं ॥३९-४३॥

मदनकेतु सुनते ही स्वर्ग से चलकर भारतवर्ष में जहाँ सनत्कुमार मुनि तपश्चर्या करते थे, वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि उनका सारा शरीर रोगों का घर बन रहा है, तब भी चक्रवर्ती सुमेरु के समान निश्चल होकर तप कर रहे हैं। उन्हें अपने दुःख की कुछ परवाह नहीं है। वे अपने पवित्र चारित्र का धीरता के साथ पालन कर पृथ्वी को पावन कर रहे हैं। उन्हें देखकर मदनकेतु बहुत प्रसन्न हुआ। तब भी वे शरीर से कितने निर्मोही हैं, इस बात की परीक्षा करने के लिए उसने वैद्य का वेष बनाया और लगा वन में घूमने। वह घूम-घूमकर यह चिल्लाता था कि “मैं एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूँ, सब वैद्यों का शिरोमणि हूँ। कैसी ही भयंकर से भयंकर व्याधि क्यों न हो उसे देखते-देखते नष्ट करके शरीर को क्षणभर में मैं निरोग कर सकता हूँ।” देखकर सनत्कुमार मुनिराज ने उसे बुलाया और पूछा तुम कौन हो? किसलिए इस निर्जन वन में घूमते फिरते हो? और क्या कहते हो? उत्तर में देव ने कहा—मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूँ। मेरे पास अच्छी से अच्छी दवाएँ हैं। आपका शरीर बहुत बिगड़ रहा है, यदि आज्ञा दे तो मैं क्षणमात्र में इसकी सब व्याधियाँ खोकर इसे सोने सरीखा बना सकता हूँ। मुनिराज बोले—हाँ तुम वैद्य हो? यह तो बहुत अच्छा हुआ जो तुम इधर अनायास आ निकले। मुझे एक बड़ा भारी और महाभयंकर रोग हो रहा है, मैं उसके नष्ट करने का प्रयत्न करता हूँ, पर सफल प्रयत्न नहीं होता। क्या तुम उसे दूर कर दोगे? ॥४४-५०॥

देव ने कहा—निस्सन्देह मैं आपके रोग को जड़ मूल से खो दूँगा। वह रोग शरीर से गलने वाला कोढ़ ही है न।

मुनिराज बोले—नहीं, यह तो एक तुच्छ रोग है। इसकी तो मुझे कुछ भी परवाह नहीं। जिस रोग

इत्युक्त्वा मुनिना तेन स्वनिष्ठीवनमात्रतः। अपनीय महव्याधिं स्वबाहुर्दर्शितः शुभः ॥५५॥
 दृष्ट्वा स्वर्णशलाकाभं बाहुमेकं मुनेस्तराम्। स्वमायामुपसंहृत्य तं प्रणम्य जगाद सः ॥५६॥
 भो स्वामिन्भवतां चित्रं चरित्रं दोषवर्जितम्। निस्पृहत्वं शरीरादौ सौधर्मेन्द्रेण वर्णितम् ॥५७॥
 सभायां यादृशं देव महाधर्मानुरागतः। तादृशं दृष्टमेवात्र समागत्य मयाऽधुना ॥५८॥
 अतस्त्वं धन्य एवात्र भूतले जन्म ते शुभम्। मनुष्यं शर्मदं चेति तं प्रशस्य मुहुर्मुहुः ॥५९॥
 नत्वा भक्तिभरेणोच्चैः स्वर्गं देवो गतस्तदा। मुनिः सनत्कुमारोऽसौ महावैराग्यतः पुनः ॥६०॥
 पञ्च प्रकारचारित्रं प्रकृष्टोद्योतनादिकम्। विधाय क्रमशो धीरः शुक्लध्यानप्रभावतः ॥६१॥
 घातिकर्मक्षयं कृत्वा लोकालोकप्रकाशकम्। सम्प्राप्तः केवलज्ञानं देवेन्द्राद्यैः प्रपूजितः ॥६२॥
 सम्बोध्य सकलान्भव्यान्सद्धर्माभूतवर्षणैः। शेषकर्मक्षयं कृत्वा प्राप्तवान्मोक्षमक्षयम् ॥६३॥

की बात मैं तुमसे कह रहा हूँ, वह तो बड़ा ही भयंकर है। देव बोला—अच्छा, तब बतलाइए यह क्या रोग है, जिसे आप इतना भयंकर बतला रहे हैं? मुनिराज ने कहा—सुनो, वह रोग है संसार का परिभ्रमण। यदि तुम मुझे उससे छुड़ा दोगे तो बहुत अच्छा होगा। बोलो क्या कहते हो? सुनकर देव बड़ा लज्जित हुआ। वह बोला, मुनिनाथ! इस रोग को तो आप ही नष्ट कर सकते हैं। आप ही इसके दूर करने में शूरवीर और बुद्धिमान् हैं। तब मुनिराज ने कहा—भाई, जब इस रोग को तुम नष्ट नहीं कर सकते, तब मुझे तुम्हारी आवश्यकता भी नहीं। कारण विनाशीक, अपवित्र, निर्गुण और दुर्जन के समान इस शरीर की व्याधियों को तुमने नष्ट कर भी दिया तो उसकी मुझे जरूरत नहीं। जिस व्याधि का वमन के स्पर्शमात्र से जब क्षय हो सकता है, तब उसके लिए बड़े-बड़े वैद्यशिरोमणि की और अच्छी-अच्छी दवाओं की आवश्यकता ही क्या है? यह कहकर मुनिराज ने अपने वमन द्वारा एक हाथ के रोग को नष्टकर उसे सोने-सा निर्मल बना दिया। मुनि की इस अतुल शक्ति को देखकर देव भौंचक्का रह गया। वह अपने कृत्रिम वेष को पलटकर मुनिराज से बोला—भगवन्! आपके विचित्र और निर्दोष चारित्र की तथा शरीर में निर्मोहपने की सौधर्म इन्द्र ने धर्म प्रेम के वश होकर जैसी प्रशंसा की थी, वैसा ही मैंने आपको पाया। प्रभो! आप धन्य है, संसार में आप ही का मनुष्य जन्म प्राप्त करना सफल और सुख देने वाला है। इस प्रकार मदनकेतु सनत्कुमार मुनिराज की प्रशंसा कर और बड़ी भक्ति के साथ उन्हें बारम्बार नमस्कार कर स्वर्ग में चला गया ॥५१-६०॥

इधर सनत्कुमार मुनिराज क्षणक्षण में बढ़ते हुए वैराग्य के साथ अपने चारित्र को क्रमशः उन्नत करने लगे अन्त में शुक्लध्यान के द्वारा घातिया कर्मों का नाशकर उन्होंने लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया और इन्द्र धरणेन्द्रादि द्वारा पूज्य हुए ॥६१-६२॥

इसके बाद वे संसार में दुःखरूपी अग्नि से झुलसते हुए अनेक जीवों को सद्धर्मरूपी अमृत की वर्षा से शान्त कर उन्हें मुक्ति का मार्ग बतलाकर और अन्त में अघातिया कर्मों का भी नाशकर मोक्ष में जा विराजे, जो कभी नाश नहीं होने वाला है ॥६३॥

सोऽस्माकं केवलज्ञानी स्वर्गमोक्षसुखप्रदः। पूजितो वन्दितो नित्यं भूयात्सत्केवलश्रिये ॥६४॥
यथाऽनेन मुनीन्द्रेण चारित्रोद्योतनं कृतम्। तथा न्येन सुभव्येन कर्तव्यं तद्धि शर्मदम् ॥६५॥
गच्छे श्रीमति मूलसङ्घतिलके श्रीशारदायाः शुभे। श्रीभट्टारकमल्लिभूषणगुरुश्चारित्रचूडामणिः।
तच्छिष्यो गुणरत्नरञ्जितमतिर्नित्यं सतां सद्गतिर्भूयान्मे भवतारको वरमुदे श्रीसिंहनन्दी मुनिः ॥६६॥

इति चारित्रोद्योतिनी श्रीसनत्कुमारचक्रवर्तिनः कथा समाप्ता।

४. श्रीसमन्तभद्रस्वामिनः कथा

नत्वा जिनं जगत्पूज्यं द्योतने दृष्टिबोधयोः। श्रीमत्समन्तभद्रस्य चरित्रं रचयाम्यहम् ॥१॥
इहैव दक्षिणस्थायां काञ्च्यां पुर्यां परात्मवित्। मुनिः समन्तभद्राख्यो विख्यातो भुवनत्रये ॥२॥
तर्कव्याकरणोत्कृष्टच्छन्दोऽलङ्कारकादिभिः। अनेकशास्त्रसन्दोहैर्मण्डितो बुधसत्तमः ॥३॥
दुर्द्धरानेकचारित्ररत्नरत्नाकरो महान्। यावदास्ते सुखं धीरस्तावत्तत्कायकेऽभवत् ॥४॥
असद्वेद्यमहाकर्मोदयाद् दुर्दुःखदायिनः। तीव्रकष्टप्रदः कष्टं भस्मकव्याधिसंज्ञकः ॥५॥

उन स्वर्ग और मोक्ष-सुख देने वाले श्रीसनत्कुमार केवली की हम भक्ति और पूजन करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं। वे हमें भी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्रदान करें ॥६४॥

जिस प्रकार सनत्कुमार मुनिराज ने सम्यक्चारित्र का उद्योत किया उसी तरह सब भव्य पुरुषों को भी करना उचित है। वह सुख का देने वाला है ॥६५॥

श्रीमूलसंघ सरस्वतीगच्छ में चारित्रचूडामणि श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। सिंहनन्दी मुनि उनके प्रधान शिष्यों में थे। वे बड़े गुणी थे और सत्पुरुषों को आत्मकल्याण का मार्ग बतलाते थे। वे मुझे भी संसार समुद्र से पार करें ॥६६॥

४. समन्तभद्राचार्य की कथा

संसार के द्वारा पूज्य और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान का उद्योत करने वाले श्री जिन भगवान् को नमस्कार कर श्री समन्तभद्राचार्य की पवित्र कथा लिखता हूँ, जो कि सम्यक्चारित्र की प्रकाशक है ॥१॥

भगवान् समन्तभद्र का पवित्र जन्म दक्षिणप्रान्त के अन्तर्गत कांची नाम की नगरी में हुआ था। वे बड़े तत्त्वज्ञानी और न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों के भी बड़े भारी विद्वान् थे। संसार में उनकी बहुत ख्याति थी। वे कठिन से कठिन चारित्र का पालन करते, दुस्सह तप तपते और बड़े आनन्द से अपना समय आत्मानुभव, पठन-पाठन, ग्रन्थरचना आदि में व्यतीत करते ॥२-४॥

कर्मों का प्रभाव दुर्निवार है। उसके लिए राजा हो या रंक हो, धनी हो या निर्धन हो, विद्वान् हो या मूर्ख हो, साधु हो या गृहस्थ हो सब समान हैं, सबको अपने-अपने कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। भगवान् समन्तभद्र के लिए भी एक ऐसा ही कष्ट का समय आया। वे बड़े भारी तपस्वी थे, विद्वान् थे, पर कर्मों ने इन बातों की कुछ परवाह न कर उन्हें अपने चक्र में फँसाया। असातावेदनीय के तीव्र